THE TIMES OF INDIA

Date: 31-10-25

Port-Ability

Maritime growth and governance are finally being addressed seriously and with commitment. It's a long voyage ahead

TOI Editorials

As the Maritime Leaders Conclave comes to a close, the future of India's ports ecosystem looks promising, thanks to GOI's strong investment push and a 360-degree approach to development. This is long overdue – despite a coastline stretching over 11,000km and about 14,000km of navigable waterways, India underuses its maritime potential compared to road and rail. Currently, just 7% of freight (by tonne-km) moves by sea or inland waterways, while about 65% goes by road and 22% by rail. Contrast that with China, where 34% of freight moves by water, 43% by road, and 17% by rail. Of course, the thing about ports is that it's not about catching up – it's about playing to geography's strengths. India's strategic location offers a natural alternative to existing global trade routes increasingly exposed to geopolitical uncertainties.

A raft of four new legislations passed this year, led by the Indian Ports Act, 2025, aims to modernise port governance, improve legal clarity, enhance transparency and streamline port and shipping operations. However, the Ports Act's passage without debate has had critics worry that dispute resolution mechanisms may not be enough to attract investors. India's 12 major and over 200 minor ports handle nearly 95% of the country's export-import cargo. But the share managed by the mega ports has shrunk, while smaller ports have been moving more goods. Yet the rise of ultra-large container vessels has pushed global shipping towards deeper, more reliable large ports.

Another challenge is that 90-95% of India's cargo is transported by foreign shipping lines, and most containers are imported, an area dominated by China. GOI knows port modernisation and better governance alone won't automatically boost Indian shipping. Shipowners and builders have very different needs from port and terminal operators, whose competitiveness depends on location, service quality, tariffs, and facilities. For carriers, operational efficiency is what truly matters – it doesn't matter whether a port is public or private, as long as the turnaround is quick and reliable. As long as foreign carriers dominate India's trade, the country will have limited influence over key issues such as freight rates, even as its ports become more efficient. GOI has to stay on the ball to ensure growth isn't caught in incremental measures when giant leaps are needed.

THE HINDU

Date: 31-10-25

Out of the fortress

Tiger conservation policy rightly sees people as stakeholders, not trespassers

Editorial

A new Union Tribal Affairs Ministry policy framework is a reminder that India's conservation strategy is not a fortress conservation model but one in which protecting the country's tigers is a social contract. The policy's foremost virtue is reiteration that people living near or inside forests cannot be relocated until the Forest Rights Act (FRA) 2006 process has been completed, affirming that they are stakeholders, not trespassers. This view has sadly been falling out of favour with a government that is increasingly seeing forests solely for their climate utility and a judiciary keen to settle long-standing disputes. The policy casting relocation as an "exceptional" measure also overturns the 2024 National Tiger Conservation Authority directive to remove villages en masse from tiger reserves. Instead of treating humans and tigers as mutually exclusive, the framework promotes research and pilot projects on sustainable co-habitation that could help redefine tiger conservation through a more socially legitimate, and possibly more resilient model. Its invocation of the SC/ST (Prevention of Atrocities) Act for unlawful evictions and a three-tier system for redress also provide a safety net rarely available to these communities.

This said, forest-dependent communities have varied needs: some expect hospitals and schools while others fight to preserve traditional lifestyles. Equally, tigers are sensitive and the reason many conservationists believe human-free core zones are essential to conserve apex predators. A national mission to protect tigers on scientific terms needs to ensure such tracts. Fundamentally, while a national policy protects rights, fine-grained mechanisms sensitive to particular local conditions are crucial for people and tigers to sustainably coexist. Such mechanisms are however beyond the ability of top-level Ministries. The conservation establishment is likely to resist the new policy because it could slow efforts to consolidate tiger habitats and increase the implementation burden, potentially leading to dual policies on the ground. In fact, conservation in India is largely controlled by Forest Departments under the Environment Ministry and States have wide latitude in implementing the FRA. Even in places where local departments wield significant control, forced relocations may continue in States that do not enforce the proposed National Framework for Community-Centred Conservation and Relocation. While existing policy defines compensation criteria and the minimum inviolate area for a sustainable population, their implementation often violates established principles. Just as the fortress model has often been insensitive to people's rights in practice, exiting it should not mean entering one in which India's natural riches can be forsworn.

दैनिक जागरण

Date: 31-10-25

नाकामी की शर्मनाक कहानी

संपादकीय

मेडिकल जर्नल लैंसेट के इस निष्कर्ष पर हैरानी नहीं कि भारत में 2010 की तुलना में 2022 में हवा में जानलेवा साबित होने वाले पीएम 2.5 कणों की मात्रा 38 प्रतिशत अधिक हो चुकी थी और इसके चलते 17 लाख से अधिक लोग असमय काल के गाल में समा गए, जिससे भारी आर्थिक क्षति भी हुई।

यह संभव है कि सरकार प्रदूषण से हुई मौतों के इस आकलन से सहमत न हो, लेकिन इससे तो कोई भी इन्कार नहीं कर सकता कि देश में वायु प्रदूषण विकराल रूप लेता जा रहा है। यह भी सहज ही समझा जा सकता है कि 2022 की तुलना में अब वायु प्रदूषण ने और गंभीर रूप ले लिया होगा, क्योंकि बीते तीन वर्षों में इस समस्या के समाधान के लिए ठोस उपाय किए ही नहीं गए। इसका प्रमाण यह है कि इन दिनों दिल्ली समेत देश के अनेक शहर बुरी तरह प्रदूषण की चपेट में हैं।

केंद्र और राज्य सरकारें वायु प्रदूषण की गंभीर होती समस्या का समाधान कर पाने में किस तरह विफल हैं, इसका पता दिल्ली में कृत्रिम बारिश कराने के असफल प्रयासों से चलता है। समझना कठिन है कि जब यह हर तरह से सिद्ध हो चुका है कि कृत्रिम बारिश वायु प्रदूषण से पार पाने का प्रभावी उपाय नहीं, तब फिर इसकी कोशिश ही क्यों की गई? कृत्रिम बारिश कराने के प्रयोग का इसलिए कोई मतलब नहीं था, क्योंकि यदि वह सफल भी हो जाता तो भी वायु प्रदूषण से स्थायी राहत नहीं मिलनी थी।

एक लंबे समय से यह देखने को मिल रहा है कि वायु प्रदूषण से निपटने के जतन तब किए जाते हैं, जब वह सिर उठा लेता है। ऐसा यह जानते हुए भी किया जाता है कि प्रदूषण का निवारण रातोंरात नहीं किया जा सकता। इससे यही पता चलता है कि सरकारें और उनकी प्रदूषण रोधी एजेंसियां सर्दियों के आगमन के साथ जहरीली होती हवा को लेकर तनिक भी गंभीर नहीं और वे एक बड़े संकट के समाधान का दिखावा भर करती हैं।

विडंबना यह है कि सुप्रीम कोर्ट का हस्तक्षेप भी प्रदूषण से निपटने में सहायक नहीं बन पा रहा है। कुल मिलाकर देखें तो हर कोई नाकाम है। वर्ष दर वर्ष गंभीर होता वायु प्रदूषण राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी के साथ शासन तंत्र की सामूहिक विफलता की कहानी इसलिए बयान करता है, क्योंकि औसत जनता इस संकट से बेपरवाह दिखती है। यह तब है, जब वायु प्रदूषण आम आदमी की सेहत के लिए एक बड़े संकट के रूप में उभर आया है।

यदि आम जनता वायु प्रदूषण को अपने जीवन के लिए आफत मानकर नेताओं को जवाबदेह बनाने के लिए सक्रिय नहीं होती तो शासन-प्रशासन के स्तर पर वैसी ही ढिलाई बरती जाती रहेगी, जैसी दशकों से बरती जा रही है। शर्मनाक यह है कि यह ढिलाई इसके बाद भी बरती जा रही है कि वायु प्रदूषण देश की बदनामी का भी कारण बन रहा है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 31-10-25

पराली की समस्या का संभावित हल

अरुणाभ घोष, कुरिंजी केमांथ (लेखक सीईईडब्ल्यू में क्रमश: मुख्य कार्याधिकारी और कार्यक्रम प्रमुख हैं। ये उनके निजी विचार हैं)

उत्तर भारत में फसलों के अवशेष यानी पराली जलाने का काम शुरू हो चुका है। बीते सात वर्षों में कई उपाय किए गए ताकि प्रदूषण बढ़ाने वाले इस चलन पर अंकुश लगाया जा सके। इस दौरान फसल अवशेष प्रबंधन मशीनों के वितरण से लेकर जैव ईंधन परियोजनाओं का सहयोग करने और जुर्माना लगाने तक जैसे काम किए गए। इसके बावजूद आर्थिक बाधाओं और व्यवस्थागत खामियों के चलते कई किसानों के पास पराली प्रबंधन के बहुत सीमित विकल्प रह गए। हालांकि पराली जलाने पर जुर्माना लगाने की बात कुछ लोगों को पसंद आने वाली होती है लेकिन इसकी वास्तविक वजह को हल करके ही स्थायी समाधान तलाश किया जा सकता है।

दिल्ली की हवा की गुणवत्ता मापने वाले एयर क्वालिटी डिसीजन सपोर्ट सिस्टम के मुताबिक हर वर्ष करीब 20 दिनों तक जब पराली जलाने का काम चरम पर होता है उस समय दिल्ली के पीएम 2.5 प्रदूषण में 15-30 फीसदी की बढ़ोतरी होती है। चूंकि यह शहर के बाहर उत्पन्न होने वाले प्रदूषण के कारण होता है इसलिए पंजाब और हरियाणा में समन्वित प्रयास करना जरूरी है। ऐसे सहयोग की मदद से ही राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में हवा की गुणवत्ता में सुधार हो सकता है।

अगले तीन साल तक संयुक्त प्रयास किए जाएं तब जाकर हमें अक्टूबर और नवंबर के बीच ऐसा माहौल मिल सकता है जहां प्रदूषण कम हो। वर्ष 2028 तक इन उपायों की बदौलत पराली जलाने के मौसम में पीएम 2.5 में औसतन 14 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर की कमी आएगी और नवंबर के अधिकतम प्रदूषण के दिनों में यह कमी 40 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर तक हो सकती है। उदाहरण के लिए देखें तो नवंबर 2024 में दिल्ली में औसतन मासिक पीएम 2.5 का स्तर 230 माइक्रोग्राम प्रति घन मीटर था।

सबसे पहले, भूसे को संभालने वाली मशीनों के बेहतर प्रबंधन के लिए कस्टम हायरिंग सेंटरों (सीएचसी) में सुधार किया जाना चाहिए। पंजाब और हरियाणा के पास ऐसी ढाई लाख से अधिक मशीनें हैं, जो सैद्धांतिक रूप से सभी गैर-बासमती धान के खेतों को कवर करने के लिए पर्याप्त हैं। फिर भी, सीएचसी में किराये की व्यवस्था अव्यवस्थित और अपारदर्शी है, जिसके कारण यह व्यवस्था केवल 40 फीसदी मशीनों के साथ ही काम कर रही है। ऊर्जा, पर्यावरण और जल परिषद

(सीईईडब्ल्यू) के एक हालिया अध्ययन के अनुसार, खेत में ही पराली प्रबंधन करने वाले पंजाब के केवल 15 फीसदी किसान ही सीएचसी से किराये की मशीनें लेते हैं। हालांकि सीएचसी को ये मशीनें 80 फीसदी सब्सिडी पर मिलती हैं, लेकिन वित्तीय रूप से टिकाऊ बने रहने के लिए उन्हें हर सीजन में पर्याप्त क्षेत्र में काम करना जरूरी है।

उदाहरण के लिए सब्सिडी के तहत 48,000 रुपये में खरीदा गए सुपर सीडर को अगर अगले पांच सालों तक हर साल 100 एकड़ (40 हेक्टेयर) जमीन के लिए किराए पर दिया जाए तब जाकर उसकी लागत वसूल होती है। इस वर्ष राज्य सरकारों को कई बड़े सुधार करने चाहिए। उदाहरण के लिए हर सीएचएसी द्वारा सुपर सीडर के लिए कम से कम 40 हेक्टेयर जमीन पर काम करना जरूरी करना। उन्हें किसानों और सीएचसी को पंजाब के उन्नत किसान जैसे मोबाइल ऐप्स पर एक साथ लाना चाहिए ताकि मशीनों को अबाध ढंग से बुक किया जा सके।

इसके अतिरिक्त, सरकारों को इन केंद्रों के लिए मशीनों के रखरखाव पर तकनीकी प्रशिक्षण को प्राथमिकता देनी चाहिए ताकि मशीनें कम समय के लिए बंद रहें। वर्ष2026 तक, सरकार को मशीन सब्सिडी योजना को फिर से डिजाइन करना चाहिए ताकि उन सीएचसी को संचालन संबंधी सहायता दी जा सके जो न्यूनतम सेवा लक्ष्यों को पूरा करते हैं।

दूसरा, पंजाब और हरियाणा के कृषि विभागों को जमीनी स्तर पर काम करना चाहिए और फसल अवशेष प्रबंधन से जुड़े मिथकों को तोड़ना चाहिए। ऐसे मिथक प्रचलित हैं कि अगर मशीनों का इस्तेमाल किया गया तो कीटों का हमला होगा और उपज में कमी आएगी। केंद्र सरकार ने जो संशोधित सीआरएम परिचालन दिशानिर्देश जारी किए हैं उनके मुताबिक प्रति राज्य सालाना करीब 2.06 करोड़ रुपये की राशि प्रशिक्षण और प्रदर्शन के लिए आवंटित किए जाएंगे।

यह राशि पंजाब द्वारा इस वर्ष पराली प्रबंधन के लिए आवंटित लगभग 500 करोड़ रुपये के केवल 0.5 फीसदी के बराबर है। राज्यों को अपने वार्षिक फसल अवशेष प्रबंधन (सीआरएम) बजट का 5 फीसदी तक रणनीतिक सूचना, शिक्षा और संचार (आईईसी) गतिविधियों के लिए आवंटित करना चाहिए। इनमें खेतों में प्रदर्शन, सर्वोत्तम दस्तूर की चेकलिस्ट और लागत बचत के प्रमाण शामिल होने चाहिए।

तीसरा, कम से कम 30 फीसदी धान के अवशेषों का उपयोग एक्स-सीटू तरीकों से करने के लिए बुनियादी ढांचे और आपूर्ति श्रृंखलाओं का तेजी से विकास किया जाना चाहिए। एक्स-सीटू विधियों में फसल अवशेषों का उपयोग औद्योगिक बॉयलरों में ईंधन के रूप में या बायोगैस और बायोचार उत्पादन के लिए कच्चे माल के रूप में किया जाता है, साथ ही अन्य उपयोग भी शामिल हैं। उदाहरण के लिए, पंजाब ने एक्स-सीटू विधियों के माध्यम से 59.6 लाख मीट्रिक टन फसल अवशेषों के प्रबंधन का लक्ष्य रखा था, लेकिन 2023 तक इस लक्ष्य की केवल 60 फीसदी क्षमता ही हासिल की जा सकी थी।

अगस्त 2025 तक पंजाब में जिन 70 कंप्रेस्ड बायोगैस संयंत्रों की योजना बनाई गई थी उनमें से केवल 6 ही संचालित थे। धान की पराली को औद्योगिक उपयोगों में बढ़ावा देने के लिए विभिन्न मंत्रालयों द्वारा वित्तीय प्रोत्साहन दिए जाने के बावजूद, लक्ष्य पूरे नहीं हो पाए हैं। इसका मुख्य कारण बायोमास की आपूर्ति की उच्च लागत, पर्याप्त संख्या में बेलर मशीनों की कमी, भंडारण सुविधाओं की अनुपलब्धता, आपूर्ति श्रृंखला से जुड़े पर्याप्त भागीदारों की कमी और कुशल कार्य बल का अभाव है।

वायु गुणवत्ता प्रबंधन आयोग के निर्देश के अनुसार, राज्यों को इस वर्ष धान की पराली आधारित संयंत्रों के लिए मूल्य खोज अध्ययन करना चाहिए और ऐसा मूल्य निर्धारण तय करना चाहिए जो परियोजना डेवलपर्स के लिए व्यवहारिक हो, साथ ही किसानों को उचित लाभ सुनिश्चित करे। 2026 तक, राज्य ऊर्जा विकास एजेंसियों को बायोमास भंडारण के दिशा-निर्देशों को मानकीकृत करना चाहिए ताकि नुकसान और आग लगने के जोखिम को कम किया जा सके।

आखिर में कंप्रेस्ड बायोगैस संयंत्रों से प्राप्त किण्वित जैविक खाद और बायोचार जैसे उभरते उत्पादों के लिए बाजार विकास किया जाए ताकि इनका सही उपयोग सुनिश्चित किया जाए। फरमेंटेड खाद और बायोचार के उपयोग से मिट्टी में पोषक तत्वों को समृद्ध करने के लिए व्यावसायिक बाजारों को सुनिश्चित करना इन उभरते क्षेत्रों की वित्तीय स्थिरता के लिए आवश्यक है। हाल ही में उर्वरक (अकार्बनिक, जैविक या मिश्रित) नियंत्रण आदेश, 1985 में संशोधन कर फरमेंटेड खाद के लिए गुणवत्ता मानक निर्धारित किए गए हैं, लेकिन केंद्र सरकार ने अभी तक बायोचार के लिए मानकों की अधिसूचना जारी नहीं की है।

बायोचार से प्राप्त प्रीमियम कार्बन क्रेडिट की वैश्विक मांग को भुनाकर भारतीय किसानों के लिए नए राजस्व स्रोत खोले जा सकते हैं। वर्ष2027 तक, सरकारों को राज्य कृषि विश्वविद्यालयों को निर्देश देना चाहिए कि वे किण्वित खाद और बायोचार के लिए उपयोग संबंधी दिशानिर्देश (मात्रा, आवृत्ति और विधियां) तैयार करें। इसके साथ ही, अधिक प्रमाण, सक्रिय प्रशिक्षण और खेत स्तर पर परीक्षणों की आवश्यकता है ताकि किसानों का भरोसा बढ़ाया जा सके।

अगले बोआई सत्र से, राज्यों को धान की पराली कम करने पर ध्यान देना चाहिए, जिसके लिए अनाज खरीद नियमों में बदलाव आवश्यक है। यह काम अल्पावधि वाली धान की किस्मों जैसे पीआर 126 आदि को बढ़ावा देकर किया जा सकता है, जो ज्यादा उपयोग की जाने वाली और अधिक जल-खपत वाली पूसा 44 की तुलना में बेहतर विकल्प है।

पूसा 44 प्रति हेक्टेयर लगभग दो टन अतिरिक्त पराली उत्पन्न करती है, जिससे अवशेष जलाने की समस्या बढ़ती है। 2023 में पंजाब के गैर-बासमती खेतों में पीआर 126 की हिस्सेदारी 38 फीसदी रही। वर्ष 2026 तक, केंद्र सरकार को प्रति एकड़ धान खरीद की सीमा तय करनी चाहिए, जो जिले स्तर पर अल्प-अवधि वाली किस्मों की औसत उपज के बराबर हो। इससे पूसा 44 का आकर्षण घटेगा, क्योंकि उसकी अतिरिक्त उपज को सरकार द्वारा खरीदा नहीं जाएगा। यह प्रशासनिक रूप से संभव है, क्योंकि सरकार पहले ही खाद्यान्न खरीद प्रक्रिया के लिए भूमि रिकॉर्ड को एकीकृत कर चुकी है।

अगले तीन वर्षों के लिए एक व्यावहारिक और हासिल किए जा सकने वाला रोडमैप अपनाने के लिए नीति-निर्माताओं, किसानों, उद्योगों और शैक्षणिक संस्थानों के बीच सहयोग की आवश्यकता है।